REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 8 | MAY - 2026

स्वधीनता काल में शास्त्रीय संगीत की दशा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

रवीन्द्र कुमार धुर्वे
शोधार्थी, संगीत विभाग
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. देवाशीष बनर्जी
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

भारतीय शास्त्रीय संगीत न केवल भारत की सांस्कृतिक पहचान का मूल आधार है, बल्कि यह भारतीय चिंतन, आत्मिक साधना, सामाजिक संरचना एवं ऐतिहासिक चेतना का भी दर्पण रहा है। इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है, जो वैदिक काल से आरंभ होकर वर्तमान युग तक जीवंत बनी हुई है। ऋषियों द्वारा गाए गए सामगान, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, मत्तविलास प्रहसन से लेकर मध्यकालीन भक्तिकालीन संगीत और फिर दरबारी संगीत का यह विकासक्रम इस कला के गहन सांस्कृतिक महत्व को दर्शाता है।

मुख्य शब्द – भारतीय शास्त्रीय संगीत, भारत, सांस्कृतिक पहचान, भारतीय चिंतन, आत्मिक साधना, सामाजिक संरचना एवं ऐतिहासिक चेतना।

प्रस्तावना –

स्वाधीनता काल भारतीय संगीत एवं शिक्षा इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण संक्रमणकाल था। इस काल में जहाँ एक ओर औपनिवेशिक शासन के कारण भारतीय परम्परागत सांस्कृतिक संरचनाएँ विघटित हो रही थीं, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना, नवजागरण और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रक्रिया भी तीव्र गति से विकसित हो रही थी। भारतीय शास्त्रीय संगीत, जो पूर्वकाल में मुख्यतः राजदरबारों एवं अभिजात वर्ग तक सीमित था, अंग्रेजी शासन के दौरान संरक्षण के अभाव में संकटग्रस्त हो गया। ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीय रियासतों की स्वायत्तता समाप्त किए जाने से दरबारी संगीतज्ञों की आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई तथा ग्वालियर, जयपुर, बनारस, लखनऊ और पटियाला जैसे प्रतिष्ठित घरानों की परम्पराएँ भी चुनौती के दौर से गुजरीं। परिणामस्वरूप अनेक संगीतज्ञों को जीविकोपार्जन हेतु संगीत शिक्षण को अपनाना पड़ा। प्रसिद्ध संगीतज्ञ बड़े गुलाम अली खाँ ने इस स्थिति को व्यक्त करते हुए कहा था कि अब संगीत के लिए न तो दरबार शेष रहे और न ही पूर्ववत् श्रोता, अतः संगीत शिक्षण ही एकमात्र साधन रह गया है।[1]

ब्रिटिश शासनकाल में पाश्चात्य संगीत, पियानो, हार्मोनियम तथा मिशनरी विद्यालयों के माध्यम से यूरोपीय संगीत संस्कृति का प्रभाव भारतीय समाज पर बढ़ने लगा। इससे भारतीय संगीत की पारंपरिक संरचना को चुनौती मिली, किन्तु इसी संघर्ष के बीच भारतीय संगीत के पुनरुत्थान की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हुई। इस

पुनर्जागरण में पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा पंडित विष्णु नारायण भातखंडे का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। पलुस्कर ने सन् 1901 में लाहौर में गंधर्व महाविद्यालय की स्थापना कर संगीत को धार्मिक, राष्ट्रीय और शैक्षणिक आधार प्रदान किया।[2] दूसरी ओर भातखंडे ने संगीतशास्त्र को व्यवस्थित रूप प्रदान करते हुए ठाट पद्धति, राग वर्गीकरण तथा पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से संगीत को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया।[3] उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भारतीय संगीत की स्थायित्वपूर्ण रक्षा तभी संभव है जब उसे विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में स्थान प्राप्त हो।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में संगीत ने जनजागरण का प्रभावी माध्यम बनकर राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित 'जन गण मन' तथा 'वंदे मातरम्' जैसे गीतों ने देशभक्ति की भावना को सशक्त किया। महात्मा गांधी संगीत को आत्मिक एवं नैतिक चेतना का माध्यम मानते थे। गांधी जी के अनुसार संगीत आत्मा की भाषा है, जो मनुष्य को सत्य और आत्मबोध की अनुभूति कराता है।[4] इस प्रकार संगीत केवल मनोरंजन का साधन न रहकर राष्ट्रीय आंदोलन का सांस्कृतिक अस्त्र बन गया।

स्वाधीनता काल में संगीत शिक्षा के संस्थागत विकास की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य हुए। इलाहाबाद का कैलाश संगीत विद्यालय, मराठी नाट्य संगीत मंडल, मद्रास संगीत अकादमी तथा गंधर्व महाविद्यालय जैसी संस्थाओं ने संगीत को व्यवस्थित शिक्षा प्रणाली से जोड़ा।[5] इन संस्थानों में गायन एवं वादन के साथ–साथ परीक्षा प्रणाली, प्रमाणपत्र तथा डिग्री पाठ्यक्रमों की व्यवस्था प्रारम्भ की गई, जिससे संगीत को एक सम्मानित शैक्षणिक विषय के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसी काल में संगीत की सामाजिक स्वीकार्यता में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। पूर्व में जहाँ संगीत को केवल कुलीन वर्ग की कला माना जाता था, वहीं इस युग में स्त्रियों तथा निम्न वर्गों की भागीदारी बढ़ी। बेगम अख्तर, गंगूबाई हंगल तथा केसरबाई केरकर जैसी महिला कलाकारों ने संगीत को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाकर इस क्षेत्र में स्त्री सहभागिता को सशक्त आधार प्रदान किया।[6]

अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात शिक्षा व्यवस्था में भी व्यापक परिवर्तन हुए। उन्होंने वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहित करते हुए मेडिकल तथा इंजीनियरिंग महाविद्यालयों की स्थापना की। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा को संगठित रूप प्रदान किया गया। परीक्षा प्रणाली, छात्रवृत्तियों तथा शिक्षण–प्रशिक्षण की व्यवस्था ने शिक्षा के क्षेत्र में नई चेतना उत्पन्न की। राजा राममोहन राय ने सन् 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना कर भारतीय एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक समन्वय को प्रोत्साहित किया।[7] ब्रह्म समाज की प्रार्थना सभाओं में भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा पाश्चात्य वाद्यों का संयुक्त प्रयोग भारतीय संगीत संस्कृति में नवीन प्रयोगधर्मिता का उदाहरण था।

सन् 1882 में लॉर्ड रिपन द्वारा गठित 'हंटर आयोग' ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधारों की अनुशंसा की। इस आयोग ने प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व स्थानीय निकायों को सौंपने, छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करने तथा शिक्षा संस्थानों को अनुदान देने की नीति अपनाई।[8] इसके फलस्वरूप शिक्षा के प्रसार में वृद्धि हुई। तत्पश्चात सन् 1902 में लॉर्ड कर्जन द्वारा शिक्षा नीति में सुधार कर माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता तथा कला शिक्षा को भी महत्व प्रदान किया गया।[9] इसी जागरूकता का परिणाम था कि सन् 1929 में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा समिति ने संगीत शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया और विद्यालयी पाठ्यक्रम में संगीत को सम्मिलित करने की अनुशंसा की।[10] परिणामस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों में संगीत शिक्षण प्रारम्भ हुआ तथा बाद में माध्यमिक स्तर पर इसे ऐच्छिक विषय के रूप में स्थान प्राप्त हुआ।

विश्लेषण –

अंग्रेजों द्वारा संगीत के विकास के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए परन्तु मानविकीय एवं विज्ञान तथा अन्य विषयों से संबंधित शिक्षा प्रणाली का पाश्चात्यकरण अवश्य किया गया। इसी के फलस्वरूप विभिन्न ललित कलाओं और संगीत जैसे विषयों की शिक्षा विविध संस्थानों और विद्यालयों में सामूहिक रीति से दी जाने लगी।

संगीत के क्षेत्र में 'तानसेन' का नाम न केवल मध्य प्रदेश, बल्कि सम्पूर्ण देश में बड़े सम्मानपूर्वक लिया जाता है। तानसेन का जन्म ग्वालियर के निकट बेहट नामक स्थान पर हुआ था। पिता का नाम मकरन्द पाण्डेय था। बचपन का नाम रामतनु और तन्ना मिश्र था। तानसेन रीवा महाराज राजा 'रामचन्द्र' के दरबार में थे। तानसेन से सम्राट अकबर की मुलाकात इसी दरबार में हुई थी। अकबर को तानसेन ने अपने मधुर गायन से

अत्यधिक प्रभावित किया था और अकबर ने फिर तानसेन को अपना दरबारी गायक बना लिया और तानसेन को अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया।

प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का जन्म त्रिपुरा के शिवपुर नामक ग्राम में हुआ था। इनका बचपन का नाम 'आलम' था। पिता साधू खाँ, माता श्रीमती हरसुन्दरी थीं। बचपन से सांगीतिक प्रेम रूझान होने के कारण इन्होंने त्रिपुरा दरबार में सुप्रसिद्ध रबाबवादक काजिम अली खाँ से सितार प्रशिक्षण लिया। तत्पश्चात कोलकाता के हबोदत्त से वाद्य संगीत में शिक्षा ग्रहण की और फिर कालान्तर में रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ से सरोद की शिक्षा ग्रहण की। मैहर रियासत में दरबारी संगीतज्ञ नियुक्त हुए और मैहर में ही सपरिवार संगीत साधना में रत हो गये।

मध्य प्रदेश के संगीत मनीषियों में उस्ताद हाफिज अली खाँ एक विद्वान संगीतज्ञ हैं। हाफिज अली का जन्म स्थान ग्वालियर है। सरोद वादन में अपने चमत्कारिक प्रदर्शन से देश–विदेश में ख्याति अर्जित करने वाले हाफिज अली खाँ को संगीत विरासत में मिला था। पिता नन्हे खाँ सरोद बजाने में विशेष प्रवीण थे। ग्वालियर दरबार में दरबारी संगीतज्ञ थे। उस्ताद ने रामपुर के उस्ताद वजीर खाँ से शिक्षा ग्रहण की। उस्ताद ग्वालियर के माधव राव सिंधिया और जीवाजी राव के दरबार में रहे फिर तत्पश्चात माधव संगीत विद्यालय में नियुक्त हुए। 1960 में पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत हुए।

नाचा छत्तीसगढ़ी बोली का प्रमुख लोकनाट्य है, परन्तु मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित है। प्रहसन और व्यंग्य नाचा का प्रमुख स्वर है। इसके द्वारा किसी भी घटना या बात को तुरन्त प्रस्तुत किया जा सकता है। ये अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त पक्ष है। सामाजिक कुरीतियों, विषमताओं, राजनीतिक, ढोंग और आडम्बरों पर तीखी चोट नाचा द्वारा की जाती है।

बस्तर क्षेत्र की जनजाति में नाट्य का एक पूर्व विकसित एवं सशक्त स्वरूप पाया जाता है। बस्तर में इसे भतरा नाट के नाम से ही जाना जाता है। भतरा नाट में भारतीय लोक जीवन के ठेठ स्वभाव से उपजे हास्य एवं व्यंग्य से दर्शकों का मनोरंजन तो होता ही है पर साथ ही साथ सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार होता है।

यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र में व्यायाम, शारीरिक करतब, शौर्य प्रदर्शन और देहशक्ति मूलक कार्य–कौशलों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण किया जाता है। मध्य प्रदेश की लोक नाट्य परम्परा में माच एक महत्वपूर्ण रंगरूप है। यह मालवा क्षेत्र का मुक्ताकाशी लोकमंच लगभग दो सौ वर्षों से लोकानुरंजन का सशक्त माध्यम रहा है। माच एक प्रभावी जनमंच है, जिसमें मालवी लोकजीवन पर आधारित व राधा कृष्ण सम्बन्धी प्रहसन व मूलतः ढोलक सारंगी का खेल है।

खम्ब स्वांग कोरकुओं के स्वांग लोककथाओं पर आधारित होते हैं। खम्ब स्वांग के केन्द्र में विदूषक होता है। विदूषक विचित्र वेशभूषा, अटपटे हाव–भाव और उक्तियों से दर्शकों को लोटपोट कर देता है साथ ही चुटीली बातों से तिलमिला भी देता है। खम्ब स्वांग के मुख्य वाद्य झांझ और मृदंग होते हैं। खम्ब स्वांग में सर्वप्रथम गणपति पूजन फिर दो युवक हांथ का स्वांग लेकर खम्ब में प्रवेश करते हैं। दो–चार नृत्य गीतों के बाद मूल स्वांग का प्रवेश होता है।

निमाड़ी गम्मत ये निमाड़ क्षेत्र का पारम्परिक लोकनाट्य है, यह तीन अवसरों पर होता है – नवरात्रि, होली, गणगौर पर्व पर गम्मत का पारम्परिक आधार लोक समाज है। गम्मत करने वाले कुछ चुने हुए पात्र होते हैं। इसमें नवैया, विदूषक बनकर पारम्परिक रूप से निश्चित होते हैं। गम्मत में प्रायः स्त्री पात्र की भूमिका युवा पुरुष ही निभाते हैं। गम्मत में प्रायः पारम्परिक वाद्य झांझ, मृदंग, ढोलक के साथ हारमोनियम का प्रयोग किया जाता है।

मध्य प्रदेश के झाबुआ के आसपास के क्षेत्र में लोकनाट्य का एक रूप है। भवाई की विशेषता दैनिक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का अभिनय वेशभूषा तथा धार्मिक कथाओं के विश्वास पर आधारित है। भवाई साधारण स्तर का लोकनाट्य है। अभिनय आरम्भ होने से पूर्व गणपति तथा अम्बा की स्तुति होती है। तत्पश्चात् हास्यास्पद कथा प्रस्तुत की जाती है, इसमें अनेक पुरुष मिलकर गीत गाते हैं। प्रहसन के रूप में यह अभिनय को प्रस्तुत करते हैं।

मनसुखा एक लोक प्रहसन है। यह रास का बघेली रूपांतर है। इसमें दो मंच और दो पदों का प्रयोग होता है। मनसुखा उर्फ बिटुसक महोदय और गोपियों में नोकझोंक चलती है, छेड़छाड़ करने वाले मसखरों को गाँवों में मनसुख लाल भी कहते हैं।

नौटंकी बुन्देलखण्ड का एक प्रिय लोकनाट्य है। नौटंकी के कथानकों में धार्मिक, पौराणिक एवं प्रेमलीला पूर्ण आख्यानों का मंचन हो रहा है। कथानक के आरम्भ से पूर्व मंगलाचरण होता है, सूत्रधार आता है, फिर कथा आरम्भ हो जाती है। नौटंकी में एक प्रमुख पात्र होता है, जिसे सूत्रधार कहते हैं इसे रंगा भी कहते हैं। मंगलाचरण समाप्त होते ही मंच पर आकर कथानक को बदलता है। प्रत्येक नौटंकी में एक विदूषक अवश्य होता है, जो हास्य प्रधान चेष्टाएँ करके दर्शकों को हँसाता है। अभिनय के साथ–साथ संगीत योजना नौटंकी की आत्मा है। वाद्यों में नगाड़े का प्रयोग मुख्य होता है।

हिंगोला एक मंच रहित सीधा और सरल नाट्य रूप है। दो दलों में नोकझोंक मचती है। जीता दल पराजित दल से तरह–तरह के काम लेता है और हास्य का आविर्भाव होता है। इसमें गीत गाते समय नट–नटी ही नहीं दर्शक भी भाग लेते हैं। फलतः भावों का सहचरीकरण होता है। यह मूलतः महिला नाट्य है, जो पुरूष चोरी छिपे इसे देखने का प्रयास करते हैं उनकी मरम्मत कर दी जाती है मूसर, झाड़ू बेलन लेकर अभिनय करते हैं। जिंदबा को बहलोल भी कहते हैं।

लकड़बग्घा आदिवासी युवक–युवतियों का लोक–नाट्य है, जो खुले मंच पर अभिनीत होता है। यह विवाह के बाद खेला जाता है। इसमें लकड़बग्घा युवती को उठा ले जाता है, परन्तु निरूपाय लड़की लकड़बग्घों को प्रेम करने लगती है। युवकजन लकड़बग्घों पर तीर से आहत करते हैं उसकी दर्द भरी चीखों को सुनकर वह उसकी सेवा करती है। इसमें वन्य नाट्य में पशु और मनुष्य के हार्दिक योग का अभिनय मार्मिकता से किया जाता है।

लोरिक चंदा की प्रेमगाथा का प्रसार सारे उत्तर भारतीय लोकांचलों में गाथा अथवा नाट्य रूपों में उपलब्ध होता है। इसे ज्यादातर 'राउत' जाति के लोग गाते हैं। चन्दैनी लोकनाट्य तथा सांगीतिक लोक गायक विधाओं के रूप में भी प्रचलित है। ये खड़े साज नृत्य के रूप में चन्दैनी की एक विशिष्ट पहचान बन गई है।

छाहुर बघेलखण्ड का एक पारम्परिक लोक नाट्य है। यह मूलतः कृषक जातियों का लोक नाट्य है। छाहुर लोक नाट्य का नामकरण उसके एक पात्र छाहुर से हुआ है, जो किसानी संस्कृति का परिचायक है, जिसमें चार छह लोग मिलकर छाहुर नाट्य करने में सक्षम होते हैं। इस लोकनाट्य की बोली बघेली होती है। इसमें बघेलखण्ड के सामन्ती व्यवस्था के आतंक और संघर्ष की जीवन्त प्रस्तुति छाहुर लोकनाट्य का वैशिष्ट्य है।

जनजातियों की दृष्टि से मध्य प्रदेश भारत का एक राज्य है। मध्य प्रदेश में मुरिया, माड़िया, भतरा, गोंड, बैगा, उरांव, कोरकू, सहरिया, कोल, कमार आदि युगों से अपनी आदिम ऊर्जा और पारम्परिक कला संस्कृति को संचारित कर रहे हैं। आदिम समूहों में प्रारम्भ से ही मिट्टी के विभिन्न उपकरणों और मूर्तियों का चलन देखा गया है। भारत में मिट्टी शिल्प की परम्परा बहुत प्राचीन है। मध्य प्रदेश के आदिवासी अंचलों मण्डला, बैतूल होशंगाबाद में काष्ठ शिल्प की प्राचीन और समृद्ध परम्परा दिखायी देती है। इनमें कई आदिवासी परिवारों में काष्ठ कर्म परम्परा से किया जाता है।

मध्य प्रदेश सरकार का संस्कृति विभाग तथा मध्य प्रदेश साहित्य परिषद, प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर विविध क्षेत्रों के अनेकानेक विशिष्टजनों को उनके क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु पुरस्कृत एवं सम्मानित करती है। कला साहित्य, संगीत और पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मध्य प्रदेश शासन के विभिन्न विभागों द्वारा कई समारोह आयोजित किये जाते हैं। प्रदेश के प्रमुख समारोह इस प्रकार है–

महान संगीत सम्राट तानसेन की साधना व समाधि स्थली ग्वालियर में यह समारोह प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता है। यह आयोजन मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा किया जाता है। समारोह में संगीत के विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, जिनमें देश भर के शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य कलाकार शामिल होते हैं। इसी समारोह में संगीत के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान देने वाले व्यक्ति को 'तानसेन' सम्मान प्रदान किया जाता है।

महाकवि कालिदास की स्मृति में उज्जैन नगर में कालिदास समारोह का आयोजन किया जाता है। इस समारोह में संगीत, नृत्य, कला तथा साहित्य विशेषकर संस्कृत के विद्वान एकत्र होते हैं।

यह समारोह सन् 1976 से प्रतिवर्ष फरवरी–मार्च माह में आयोजित किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के इस समारोह का आयोजन सप्त दिवसीय होता है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य का सबसे बड़ा समारोह है।

मालवा उत्सव मध्य प्रदेश राज्य पर्यटन विकास निगम द्वारा 1991 से आयोजित किया जा रहा है। इसका आयोजन प्रतिवर्ष गणेश चतुर्थी से त्रयोदशी तक इन्दौर, उज्जैन और मांडू में क्रमशः बारी–बारी से होता है।

यह समारोह अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी द्वारा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की साधना स्थली मैहर में प्रतिवर्ष आयोजित किया जाता है। इस समारोह में नृत्य व संगीत सम्बन्धित कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते है। इन्दौर के संगीत साधक अमीर खाँ की स्मृति में अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी द्वारा प्रतिवर्ष इन्दौर में अमीर खाँ समारोह का आयोजन किया जाता है। समारोह में संगीत व गायन से सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। तुलसी उत्सव का आयोजन मध्य प्रदेश तुलसी अकादमी द्वारा धनतेरस से दीपावली तक चित्रकूट के मंदाकिनी तट पर किया जाता है। विभिन्न राज्यों की प्रसिद्ध रामलीला मण्डलियों की सहभागिता से प्रतिवर्ष यह समारोह आयोजित किया जाता है। पहले यह केवल भोपाल में होता था, जबकि अब प्रदेश के विभिन्न नगरों में आयोजित किया जाता है।

मध्य प्रदेश के क्षेत्रीय लोक कला समारोह के चयनित लोक कलाकारों को एक मंच पर लाकर कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। इस समारोह हेतु लोक कला के विभिन्न स्वरूपों की प्रस्तुति होती है।

मध्य प्रदेश की स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा 1 नवम्बर 1999 से मध्य पर्व का आयोजन शुरू किया गया है। भोपाल में आयोजित इस कार्यक्रम में प्रदेश की संस्कृति, कला, संगीत, साहित्य जैसे शीर्षकों पर प्रकाश डाला जाता है।

स्वाधीनता काल के दौरान भारतीय शास्त्रीय संगीत ने सामाजिक, सांस्कृतिक तथा संरचनात्मक बदलावों के मध्य एक नवीन दिशा प्राप्त की। इस काल में संगीत ने पारम्परिक संरचनाओं से बाहर निकलकर एक व्यापक जनसमूह तक पहुँच बनायी तथा वैश्विक मंच पर अपनी पहचान स्थापित किया। स्वाधीनता से पहले शास्त्रीय संगीत प्रमुख रूप से राजाओं एवं नवाबों के संरक्षण में विकसित हुआ था। स्वाधीनता काल के दौरान इन संरक्षकों के पतन से कलाकारों को जीविका के लिए नवीन मार्ग तलाशने पड़े। सरकारी संस्थाओं–संगीत नाटक अकादमी (1953), आल इंडिया रेडियो एवं दूरदर्शन ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

अतः पारम्परिक गुरु–शिष्य परम्परा के साथ–साथ संगीत शिक्षा के संस्थागत रूप लिया। गान्धर्व महाविद्यालय (1901) एवं अन्य संगीत विद्यालयों द्वारा संगीत को औपचारिक शिक्षा प्रणाली में शामिल किया, जिससे यह व्यापक जनसमूह तक पहुँचा। 1960 के दशक में पं. रविशंकर और उस्ताद अली अकबर खान जैसे कलाकारों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को पश्चिमी देशों में लोकप्रिय बनाया। इनकी प्रस्तुतियों और सहयोगों ने भारतीय संगीत को वैश्विक पहचान दिलाई। स्वाधीनता काल में शास्त्रीय और नृत्य में नवजागरण परिमार्जित हुआ। सरकारी पहल, सांस्कृतिक संस्थानों एवं उत्सवों ने इन परम्पराओं के संरक्षण तथा प्रचार में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन किया। शास्त्रीय संगीत ने सामाजिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगदान दिया है। रागों के चिकित्सीय लाभ, तनाव कम करने में सहायक है। स्वाधीनता के समय भारतीय शास्त्रीय संगीत ने संरचनात्मक परिवर्तनों, संस्थागत शिक्षण, वैश्विक पहचान एवं सामाजिक योगदान के माध्यम से एक नवीन दिशा हासिल की। इसने न सिर्फ अपनी परम्पराओं को संरक्षित किया, अपितु आधुनिक समाज में अपनी प्रासंगिकता भी बनाए रखी।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः स्वाधीनता काल भारतीय शास्त्रीय संगीत के इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण, किंतु संघर्षपूर्ण चरण था। यह वह समय था जब भारत राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता की ओर अग्रसर हो रहा था और सांस्कृतिक रूप से अपनी जड़ों से पुनः जुड़ने का प्रयास कर रहा था। इस संक्रमणकालीन दौर में शास्त्रीय संगीत ने न केवल संरक्षण की चुनौतियों का सामना किया, बल्कि अपने अस्तित्व और विकास की नई दिशाएँ भी खोजीं। इस काल में पारंपरिक दरबारी संरक्षण व्यवस्था का विघटन हुआ। राजाओं, नवाबों और जमींदारों द्वारा संगीतज्ञों को मिलने वाला आर्थिक व सामाजिक समर्थन समाप्त हो गया। इससे शास्त्रीय संगीत की परंपरागत गुरु–शिष्य परंपरा संकट में आ गई। किंतु इसी काल में संगीत ने दरबार से बाहर आकर जनसामान्य में अपनी जगह बनानी शुरू की। पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जैसे संगीताचार्यों ने संगीत को संस्थागत और शैक्षणिक स्वरूप प्रदान किया। इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप संगीत विद्यालयों की स्थापना

हुई, पाठ्यक्रम बने और संगीत एक शिक्षण विषय के रूप में विकसित हुआ। इस प्रयास ने संगीत को केवल एक वंशगत या पारंपरिक कला से हटाकर एक सर्वसुलभ और विधिवत अध्ययन योग्य विषय बना दिया। स्वाधीनता संग्राम में संगीत की भूमिका भी उल्लेखनीय रही। राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाले गीत, भजन और सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ जनमानस को प्रेरित करती रहीं। गांधी जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे राष्ट्रनायकों ने संगीत को आत्मा और स्वदेशी संस्कृति का प्रतीक माना। यही कारण था कि संगीत स्वतंत्रता आंदोलन का भी एक माध्यम बना। इस काल में स्त्रियों और वंचित वर्गों की भागीदारी भी शास्त्रीय संगीत में बढ़ी। पहले जो कला विशिष्ट वर्ग तक सीमित थी, वह धीरे–धीरे सामाजिक व्यापकता की ओर अग्रसर हुई। संगीत अब केवल प्रदर्शन या मनोरंजन का साधन नहीं रहा, वह राष्ट्रीय पहचान, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया। इस प्रकार स्वाधीनता काल शास्त्रीय संगीत के परंपरागत ढाँचे के विघटन का काल था। इसी समय आधुनिक शिक्षण संस्थानों और पद्धतियों के माध्यम से संगीत का पुनर्निर्माण प्रारंभ हुआ। संगीत के क्षेत्र में सामाजिक समावेशन, स्त्री भागीदारी और शैक्षणिक दृष्टिकोण का विकास हुआ। संगीत स्वतंत्रता आंदोलन का सांस्कृतिक शस्त्र बना और भारतीयता की भावना को प्रबल करने का साधन भी। अतः स्वाधीनता काल की परिस्थितियाँ भले ही संगीत के लिए चुनौतीपूर्ण रही हों, परंतु इन्हीं चुनौतियों के गर्भ से भारतीय शास्त्रीय संगीत के नवोन्मेष और संस्थागत विकास की आधारशिला भी रखी गई। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है।

संदर्भ –

[1] शर्मा, भगवानदास. भारतीय संगीत का इतिहास. हाथरसः संगीत कार्यालय, 2003, पृ. 145.
[2] पलुस्कर, विष्णु दिगम्बर. संगीत बाल प्रकाश. लाहौरः गंधर्व महाविद्यालय प्रेस, 1915, पृ. 11.
[3] भातखंडे, विष्णु नारायण. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति. लखनऊः संगीत कार्यालय, 1910, पृ. 22.
[4] गांधी, एम.के. महात्मा गांधी संकलित रचनाएँ. नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, 1968, पृ. 317.
[5] रानाडे, अशोक दा. म्यूजिक कॉन्टेक्स्ट्स : हिन्दुस्तानी संगीत का संक्षिप्त शब्दकोश. नई दिल्लीः प्रोमिला एण्ड कम्पनी, 2006, पृ. 201.
[6] वात्स्यायन, कपिला. भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य. नई दिल्लीः सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, 1974, पृ. 98.
[7] नेहरू, जवाहरलाल. भारत की खोज. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1981, पृ. 245.
[8] भारत सरकार. भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर आयोग) की रिपोर्ट. कलकत्ताः भारत सरकार प्रकाशन, 1882, पृ.56.
[9] मुखर्जी, एस.एन. भारत में शिक्षा का इतिहास. बड़ौदाः आचार्य बुक डिपो, 1966, पृ. 312.
[10] अल्तेकर, ए.एस. प्राचीन भारत में शिक्षा. वाराणसीः नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, 1944, पृ. 328.